International Journal of Multidisciplinary Research and Development
Online ISSN: 2349-4182, Print ISSN: 2349-5979, Impact Factor: RJIF 5.72
www.allsubjectjournal.com
Volume 4; Issue 5; May 2017; Page No. 270-273

अग्नि के त्रिविध रूप

रेखा कुमारी

संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, भारत।

1. प्रस्तावना: पृष्ठभूमि

वैदिक मन्त्रों में अग्नि के लिए ब्रह्म, सर्वादेवता, देवयोनि, वरुण, लोकाधिपति, अन्नपति, पुरोहित, स्वर्ग, अन्नाद, देवपशु, प्रिय अतिथि और हव्याट् आदि कई विशेषण प्रयुक्त किए गए हैं जिनसे अग्नि देवता के आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक स्वरूप को जाना जा सकता है। प्रस्तुत शोधपत्र ऋग्वेदीय षष्ठ मण्डलीय अग्नि देवता परक सूक्तों पर आधारित है। ऋग्वेदीय षष्ठ मण्डल में कुल सूक्त संख्या 75 है। इन सूक्तों में अग्नि देवता की 19 सूक्तों के 208 मन्त्रों में स्तुति की गयी है। अग्नि देवतापरक सूक्तों की संख्या की अपेक्षा उनकी विषय-वस्तु अत्यधिक विस्तृत एवं महत्त्वपूर्ण है जिसके आधार पर अग्नि के त्रिविध रुप को प्रस्तुत किया गया है।

2. आधिभौतिक स्वरूप

अग्नि देवता को भूलोक से, पृथिवी से, यज्ञ और उसकी वेदी से, मनुष्यों और उनके गृह में आए हुए अतिथि से तथा सम्पूर्ण प्रजा का पालन करने वाले राजा से सम्बन्धित दर्शाया गया है। जिसके द्वारा अग्नि देवता के आधिभौतिक स्वरूप को स्पष्टतः देखा जा सकता है।

i) पृथिवी सम्बन्धी

ऋग्वेदीय षष्ठ मण्डल के 9वें सूक्त में अग्नि को भूलोक में संचरण करने वाला कहा गया है-"भूलोके चरन् पार्थिवाग्निरूपेण संचरन्"। अग्नि को प्रजाजन पृथिवी पर बढ़ाते हैं तथा अग्नि मनुष्यों का सच्चा पिता और माता है। वह अग्नि वनों को जलाकर पृथिवी के ऊपर भ्रमण करने वाला भी है।

ऋग्वेद में अग्नि देवता के लिए भूमि के ऊपर आधारभूत वेदि का निर्माण करने तथा अग्नि देवता का पर्वत के अग्रभाग में रमणीय होने का वर्णन किया गया है। अग्नि देवता को माता पृथिवी की गर्भस्थानीय और क्षरणरहित वेदी पर विद्युतिमान् बताया गया है।

आधिभौतिक रूप में अग्नि पार्थिव अग्नि है जो कि गृहपति, अतिथि, पुरोहित, शासक, विद्वान्, भौतिक अग्नि, यज्ञ और मृत्यु आदि के रूप में वर्णित है। अग्नि के प्रस्तुत गृहपति और अतिथि आदि रूप ऋग्वेदीय षष्ठ मण्डल के अन्तर्गत कई स्थानों में प्राप्त होते हैं।

ii) गृहपति के रूप में

प्रत्येक घर में स्थित रहने एवं सम्पूर्ण गार्हस्थ धार्मिक कृत्यों के सम्पादक होने के कारण अग्नि को गृहपति कहा गया है जिसका वर्णन ऋग्वेद में वर्णित है। [1] यजमान द्वारा स्वयं कथित है कि अग्नि हम यजमान के गृह में उपविष्ट होकर प्रज्वलित होता है। [2] अग्नि द्वारा यजमान रक्षित होता है क्योंकि वह यजमान अग्नि का यजन करता है, स्तवन करता है तथा इन्धन, हव्य और स्तुति के साथ अग्नि को आहुति प्रदान करता है। अग्नि को घर में देदीप्यमान तथा यज्ञ करने वाली प्रजाओं के घर में होता रूप में प्रविष्ट बताया है।

iii) अतिथि के रूप में

अग्नि प्रत्येक परिवार में एक मान्य अतिथि के रूप में निवास करता है और जब भी वह आता है तो पिता की भाँति गृहवासियों को सदा अनेक प्रकार के उपहार लाकर देता है। ऋग्वेद के विभिन्न मन्त्रों में अग्नि को पिता, माता, भ्राता, पुत्र तथा मित्र आदि कहा गया है। [3]

अग्नि अतिथिवत् पूजनीय है और अग्नि के प्रति यह भाव विभिन्न स्थानों पर दृष्टिगत भी हुआ है जहाँ पर अत्यन्त प्रिय अतिथि के समान अग्नि को ईन्धन द्वारा निरन्तर पूजनीय कहा गया है। ऋग्वेद में एक अन्यत्र स्थान पर अग्नि अतिथि की तरह प्रिय और गृहस्वामी भी कहा गया है।

अतिथि का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए कहा गया है कि अतिथि को भोजन कराने में तीनों अग्नियों में किए गए यज्ञ का फल मिलता है। अतिथियों के लिए जलायी गयी अग्नि आहवनीय के, वेश्म के भीतर की अग्नि गार्हपत्य के तथा जिसमें अतिथि के लिये भोजन पकाते हैं वह दक्षिणाग्नि के तुल्य होती है।

iv) यज्ञ सम्बन्धी

अग्नि का यज्ञ से अत्यधिक घनिष्ठ सम्बन्ध है। षष्ठ मण्डल के प्रारम्भ में ही अग्नि से स्तुति की गई है कि वह यज्ञ में देवों का आह्वान करें "होता देवानामाह्वाताभवः"। [4] वैदिक मन्त्रों में विभिन्न स्थानों पर अग्नि के यज्ञ सम्बन्धी होने के प्रमाण मिलते हैं। सायणाचार्य ने लिखा है कि अग्नि यज्ञ-वेदी रूप स्थान पर उपवेशन करता है तथा मनुष्यगण अग्नि को पृथिवी पर अर्थात् वेदी पर वर्द्धित करते हैं।

सातवलेकर ने भाष्य करते हुए कहा है कि अग्नि यज्ञ की भूमि पर बैठा है [5] तथा अन्यत्र स्थान पर अग्नि का वेदी के स्थान पर आकर बैठने के लिए आहवान किया गया है।

यज्ञाभिलाषी यजमानों के गृह में अग्नि होता के रूप से प्रविष्ट होता है। याज्ञकों के गृहों में वेदी पर स्थित यज्ञ कुण्डों में नित्य निवास करते हुए सदैव उनके कल्याण की ओर ध्यान देने के कारण यह अग्नि 'दमूनाः', 'गृहपतिः', 'विश्पतिः' और 'वैश्वानरः' जैसी संज्ञाओं का भाजन बना और ऋषियों को वह अपने पिता, बन्धु एवं सुहृद् जैसा प्रतीत हुआ।

v) भूमण्डलीय तत्त्व सम्बन्धी

भूमण्डल के विभिन्न प्रमुख तत्त्वों से अग्नि का सम्बन्ध बताया गया है जिससे अग्नि का आधिभौतिक स्वरूप प्रदर्शित होता है। वनों का भक्षण करना, अंधकार को ध्वस्त करना, देवताओं को यज्ञों में लाना इत्यादि अग्नि की भौतिक क्रियायें ही हैं जो अग्नि को आधिभौतिक स्वरूप प्रदान करती है। अग्नि के आधिभौतिक स्वरूप का वर्णन निम्न प्रकार से है। [6]

वह अग्नि आधिभौतिक रूप में तीक्ष्ण मार्ग वाला है। अग्नि के दीप्तिमान रूप की तुलना कई प्रकार से दर्शायी गयी है। अग्नि अश्व की भांति मुख द्वारा तृणादि को प्राप्त करता है। कुठार जैसे अपनी धार को काष्ठ पर प्रक्षिप्त करता है उसी प्रकार अग्नि अपनी ज्वाला को तरुगुल्म आदि पर प्रक्षिप्त करता है। स्वर्णकार जैसे सुवर्ण आदि को द्रवीभूत करता है उसी

प्रकार अग्नि सम्पूर्ण वन को द्रवित करता है अर्थात् सम्पूर्ण वस्तु को अग्नि भस्मीभूत कर डालता है।

vi) राजा अथवा प्रजापालक के रूप में

आधिभौतिक पक्ष में सायण ने अग्नि को राजा माना है जो कि महाशक्तिशाली, सर्वगुण सम्पन्न, न्यायप्रिय तथा प्रजारञ्जक है। अग्नि को राजा मानते हुए कामना भी की गई है कि वह हमारे शत्रुओं को जीते। सायणभाष्य में अग्नि को प्रजाओं का पालक भी कहा गया है-"विश्पतिं विशां प्रजानां पालयितारं तमग्निं"। [7]

श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ने अग्नि को कहीं पर "विशां विश्पतिः कविः" अर्थात् प्रजाओं का शासक ज्ञानी और कहीं पर "विश्पते" अर्थात् प्रजाओं का पालक माना है। वह शासक प्रजाओं के पास जाकर उनकी परिस्थिति देखने वाला है- "चर्षणीनां प्रेतीषणिं" । वह अग्नि सभी मनुष्यों का नेता भी है क्योंकि हम अज्ञानी हैं इसलिये हम अत्यंत ज्ञानी, उत्तम शरीर वाले सुन्दर और प्रगतिशील नेता की सेवा करते हैं। [8]

महर्षि दयानन्द के अनुसार अग्नि प्रजाओं में सेवा करने और कामना करने योग्य है। [9] जिस प्रकार सूर्य अन्तरिक्ष से वृष्टि करके सम्पूर्ण जगत् को तृप्त करता है उसी प्रकार अग्नि देवता राजा रूप में न्याय से युक्त पुरुषार्थ से ऐश्वर्यों को बढ़ा कर प्रजाओं को निरन्तर तृप्त करता है। वह अग्नि सबका न्याय करने तथा सत्य-असत्य का विभाग करने, अतिशय यज्ञ करने तथा पदार्थों को मेल करने वाला, सबका प्रकाशक, विद्वानों के मध्य में मनुष्यों के सम्पूर्ण जन्मों को जानता है।

3. आधिदैविक स्वरूप

आधिदैविक स्वरूप में अग्नि एक देवता है। यह अग्नि द्युस्थानीय सूर्य तथा अन्तरिक्ष स्थानीय विद्युत् के रूप में व्याप्त है। शतपथ ब्राह्मण में अग्नि के स्वरूप का समृद्ध एवं विविधपूर्ण वर्णन प्राप्त होता है [10] जिसमें अग्नि को देवों का व्रतपति कहा है "अग्निर्वै देवानां व्रतपतिः" । अग्नि ही सबका देवता है "अग्निर्वै सर्वा देवताः" । यह देवताओं में सबसे अधिक फल देने वाला है "अग्निर्वै देवानामद्वातमाम्" तथा "सूनो वह्मा असि हि" अर्थात् सभी के द्वारा वन्दनीय प्रेरक देव है।

अग्नि देव का प्रमुख गुण उष्णता और प्रकाश है। स्तोताओं के बुलाने पर प्रातः काल उनके सामने उपस्थित होकर उनको चैतन्यमय ऊष्मा प्रदान करने वाला अग्निदेव प्रज्ञानपूर्ण प्रभू है। मनुष्यों की समस्याओं का निवारण करके उनकी अक्षय समृद्धि वाला ईश्वर और उनकी भावपूर्ण प्रार्थना सुनकर प्रसन्न होने वाला अभीष्ट देव अग्नि देवता ही पृथिवी पर रहने वाले सब लोगों का अतीव प्रिय देवता है।

i) अमर देवता के रूप में

सायणाचार्य ने अग्नि को अमर और अमरणशील माना है "हे अमृत मरणधर्मरहिताग्ने" [11] । अग्नि के जरारहित और सदैव युवा रहने के संकेत भी ऋग्वेद में मौजूद हैं। दामोदर सातवलेकर ने अग्नि को अमर देवता के रूप में जरारहित और साथ ही प्रभु, तेजस्वी, दर्शनीय और बलवान् के रूप में भी प्रतिष्ठित बताया है।

ii) देवदानादि गुणों से युक्त

अग्नि देवता देव-दानादि गुणों से युक्त है "देवदानादिगुणयुक्ताग्ने" तथा अग्नि का देव सम्बन्धी लक्षण है "देवेषुमध्ये देवोदानादिगुणयुक्तोग्निः" [12] । अग्नि देवता दानशील है और स्तोतागण अग्नि के शोभन दानशील कार्य का पूजन भी करते हैं। वह अग्नि देवता वायु की तरह सर्वगामी है तथा अन्न और गृह देनेवाला है। देवों के बीच वह अग्नि देवता ही वरणीय धन को अपने पास रखता है। [13] अग्नि देव रूप में अत्यधिक धन, पुत्र-पौत्रादि, पशु, अन्न और गृह इत्यादि देने वाला है जिससे कि उसका दानशील गुण सार्थक होता है।

अग्नि यजमानों के पशु और अपशु रूप दोनों प्रकार के धन को वर्द्धित करता है क्योंकि वह अग्नि धनाधिपति है "हे रयिवो धनवन्नग्ने"। स्तोतागण अग्नि के निकट से गो-अश्वादिरूप बहुविध धन प्राप्त करते हैं। [14] अग्नि को देव मानते हुए उससे पुत्र पौत्रादि से युक्त धन, पापरहित पर्याप्त धन और सौभाग्य प्रदान करने की प्रार्थना की गयी है। अन्नप्रदायक अग्नि अन्न और गृह अपने स्तोताओं को प्रसन्न रूप से देता है। ऋग्वेद में अग्नि से उत्कृष्ट पुत्रों के साथ शोभन अन्न प्रदान करने और कहीं अन्न के साथ पुत्र और पौत्र प्रदान करने की प्रार्थना की गयी है [15]।

अग्नि देवता अन्य देवताओं के मार्ग से गमन करने वाला है। ऋग्वेदीय षष्ठ मण्डल में अग्नि का सम्बन्ध वसुओं तथा आदित्य के मार्ग से बताया गया है। सायणाचार्य ने कहा है कि वह अग्नि देव वसुओं के मार्ग से अर्थात् अंतरिक्ष से गमन करता है-"लोकद्वयमध्यगतेन मार्गेण वहुभिरनेकैर्वसव्यैर्वसुभिः" [16] ।

अग्नि से प्रार्थना की गयी है कि वह हमें महान् रोचमान मार्ग से अर्थात् आदित्य मार्ग से स्वर्ग पहुँचाये। अग्नि देवता को एक स्थान पर बल में वायु और इन्द्र के सदृश देव-स्वरूप वाला बताया गया है। इस प्रकार अग्नि को देवताओं के मध्य में स्थित दिखाकर अग्नि के देव-स्वरूप का वर्णन किया गया है।

महर्षि दयानन्द ने कहा है कि अग्नि जानने योग्य जगदीश्वर है। अग्नि देवता प्रकाशकों का प्रकाशक, नित्यों का नित्य तथा चेतनों का चेतन है। वह जरादोष से रहित है और विशेष रूप से स्वयं पवित्र एवं सबको पवित्र करने वाला है।

iii) द्युलोक स्थित सूर्य देव के रूप में

अग्नि देव द्यावापृथिवी को उसी प्रकार से आच्छादित करता है जिस प्रकार सूर्य देव अपनी दीप्तिमान् और पूजनीय किरणों से द्यावापृथिवी को आच्छादित करता है। अग्नि देवता द्यावापृथिवी में अपनी कांति को विशेष रीति से फैलाता है और देवों का दूत होकर भ्रमण करता है।

अग्नि देवता ने द्यावापृथिवी को विस्तृत किया है और एक मन्त्र में ऋषि स्वयं कहता है कि अग्नि द्यावापृथिवी में विद्यमान है "द्यावापृथिव्योर्वर्तमानस्त्वं"। वैदिक मन्त्रों में अग्नि का वन्दन सूर्य और द्युस्थानीय रूप में किया गया है जिससे उसके आधिदैविक स्वरूप का ज्ञान होता है। ऋग्वेदीय कतिपय मन्त्रों में सूर्य देव को अग्नि का अभिगमन करने वाला कहा गया है।

वह विचित्र अग्नि अपने पथ से गमन करने वाले सूर्य के समान अन्धकारों को दूर करने वाला कहा गया है। [17] जो सूर्य की तरह प्रदीप्त और अत्यन्त दीप्तिमान् देवता है वह अग्नि है। वह अग्नि सूर्य के समान सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करता है।

अग्नि देव ने दिवसों के प्रज्ञापक सूर्य को अन्तरिक्ष पथ में संस्थापित किया है। सूर्य के समान प्रवृद्धमान अग्नि अंतरिक्ष मार्ग में भी विराजमान होता है। अग्नि देव सारा समय द्युलोक में अवतीर्ण होता है। सातवलेकर ने अग्नि को देव रूप में द्युलोक के शिरस्थान में रहने वाला कहा है।

iv) दीप्तिशाली देव रूप में

ऋग्वेद में अग्नि देवता का स्तवन करते हुए उसे अत्यधिक दीप्तिशाली कहा है। वह अग्नि अपनी दीप्ति द्वारा स्वर्ग और पृथिवी को पूर्ण करता है। वह अग्नि देवता विद्युत् के समान चमकता है "सोऽग्निर्विद्युन्न विद्युदिव"। अग्नि को वैद्युताग्नि से भी सम्बन्धित बताया गया है।

अग्नि का शुभ्र वर्ण का धूम अन्तरिक्ष में विस्तृत होकर मेघरूप में परिणत हो जाता है। [18] वह अग्नि देवता स्तुतियों द्वारा प्रसन्न होकर सूर्य की तरह दीप्ति द्वारा रूचिमान् होता है।

4. आध्यात्मिक स्वरूप

आध्यात्मिक पक्ष में प्राणतत्त्व, ऊर्जा, अन्तः शक्ति ही अग्नि है और शरीर उसका निवास स्थान है। यह ऊर्जा और अन्तः शक्ति आदि शरीर के माध्यम से ही प्रकट होते हैं। ऋग्वेद में कई स्थानों में प्रार्थना की गयी है कि हम यजमान लोग प्राणतत्त्व, संकल्पशक्ति, ऊर्जा, आत्मविश्वास, सदसद् विवेक से कभी भी पृथक् न हो क्योंकि इन्हीं तत्त्वों से जीवन की सार्थकता एवं सफलता है।

i) प्राणतत्त्व अथवा आत्माग्नि रूप में

अग्नि रूपी प्राणतत्त्व से ही जीवन रूपी अग्निहोत्र सुसम्पन्न होता है। प्राण से प्रार्थना की गयी है कि इन्द्रियों के साथ इस शरीर में आए। मन की आकांक्षाओं को अच्छी प्रकार जानने वाले इस अग्नि को सच्चा आत्मीय मानकर ऋषियों ने इसे ऋत्विज्, कवि और विप्र आदि नामों से पुकारा है।

यह आत्माग्नि शरीर का अतिथि (अ+तिथि) है क्योंकि इसके शरीर में आने जाने की तिथि निश्चित नहीं है। [18] सायणभाष्य में यह अग्नि अमरणशील है और प्राणतत्त्व अथवा आत्माग्नि बनकर मरणशील शरीरों में जठराग्नि के रूप में विद्यमान है-"मर्त्येषु मरणस्वभावेषु शरीरेष्वमृतं मरणरहितमिदं वैश्वानराख्यं ज्योतिर्जाठररूपेण वर्तत इत्यर्थः"। [19]

आध्यात्मिक रूप में अमर चेतन अग्नि वाणी के मूल स्थान में स्थित है क्योंकि यही आत्माग्नि बुद्धि के साथ मिलकर मन के द्वारा प्राण को संचारित करके नाना प्रकार से शब्द उत्पन्न करता है। बुद्धिगत् इस ज्ञानाग्नि का स्वरूप 'चित्' है। सत्-चित्-आनन्द में चित् ही आत्मा से प्रसिद्ध है जो आत्माग्नि कहलाता है। यह आत्माग्नि बुद्धि की वेदी में प्रज्वलित होता है। मन आदि इन्द्रियाँ इसमें विविध ज्ञान-संस्कारों का हवन करती है। [20]

अग्नि को मननकर्त्ता बतलाते हुए 'मनोता' विशेषण का प्रयोग किया गया है। [21] सायणाचार्य ने इस शब्द का अर्थ किया है-

"त्वं मनोता हि देवानां मनो यत्रोतं संबद्धं भवति तादृशो भवसि" [22]

अर्थात् देवों का मन जिसमें सम्बद्ध होता है। 'देव' शब्द का अर्थ इन्द्रियगण भी होता है। मनरूप इन्द्रिय आत्मा से सम्बद्ध होती है, अतः मनोता अग्नि आत्मा है। इसमें मन आदि सारी इन्द्रियाँ सम्बद्ध रहती है।

ii) परमात्मा एवं परमेश्वर रूप में

अध्यात्म रूप में अग्नि परमात्मा है जो कि कामनाओं को पूर्ण करने वाला और आंतरिक रूप से मन को स्वच्छ करने वाला है। सायणाचार्य ने अग्नि को मन से भी अत्यधिक वेगवान् बताया है-

"ध्रुवं निश्चलं मनः मनसः तस्मादपि जविष्ठं अतिशयेनवेगवत्"। [23]

आध्यात्मिक व्याख्याकारों के मत में वेद में संस्तुत सभी देवता एक परमेश्वर के ही अंग-प्रत्यंग माने जाते है। उन सब से एक परब्रह्म अथवा परमेश्वर की ही स्तुति की जाती है। सभी देवता वाचक नाम सृष्टि के मूल कारण परमेश्वर के ही है। ऋग्वेद में वर्णित भी है। [24]

महर्षि दयानन्द के दृष्टिकोण में इस शरीर में दो चेतन नित्य हुए जीवात्मा और परमात्मा विद्यमान हैं। उन दोनों में एक अल्पदेशस्थ जीव है, वह शरीर को धारण करके प्रकट होता, वृद्धि को प्राप्त होता और परिणाम को प्राप्त होता तथा हीन दशा को प्राप्त होता, पाप और पुण्य के फल का भोग करता है। द्वितीय परमेश्वर ध्रुव, निश्चल, सर्वज्ञ, कर्मफल के सम्बन्ध से रहित है।

iii) आत्मविश्वास एवं सङ्कल्पशक्ति के रूप में

आध्यात्मिक पक्ष में अग्नि आत्मविश्वास और सङ्कल्पशक्ति के रूप में सर्वविध आनन्द की प्राप्ति करा सकता है। यदि मनुष्य आत्मविश्वास से युक्त हो तो वह सब कुछ करने में समर्थ हो पाता है। मनुष्य का आत्मविश्वास ही उसे सुख और सुरक्षा की भावना प्रदान करता है। जिस प्रकार सोने की शुद्धत्ता और अशुद्धत्ता की परख अग्नि में होती है उसी प्रकार सङ्कल्प शक्ति अथवा आत्मविश्वास ही सत् असत् की पहचान कराते हैं।

शत्रुओं, पापों और कष्टों का अतिक्रमण करने के लिए आत्मशक्ति अनिवार्य है जिसकी प्राप्ति हेतु अग्नि देवता से प्रार्थना की गयी है। [25] वह अग्नि अपने स्तोताओं को सुख प्रदान करता है जिससे स्तोता गण आन्तरिक रूप से प्रसन्न रहते है।

अग्नि देवता से शत्रुओं के विनाश हेतु भी प्रार्थना की गयी है जिससे सभी को सुख प्राप्ति हो। जो शत्रु अन्तर्हित और अभ्यन्तरवर्ती देश में वर्तमान होकर लोगों को बाधित करता है उन दोनों प्रकार के शत्रुओं को दग्ध करने हेतु अग्नि से प्रार्थना की गयी है। [26]

मन शुद्धि के लिए अथवा सुख का अनुभव करने के लिए अग्नि से प्रार्थना की गयी है कि वह अग्नि दुख दायक शत्रु-सैन्य को दूर करें जिससे हम लोग शत हेमन्त पर्यन्त सुख भोग कर सकें।

5. निष्कर्ष

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि अग्नि अपने आधिभौतिक पक्ष में पार्थिव अग्नि, गृहपति, अतिथि और प्रजापालक अथवा राजा के रूप में प्रसिद्ध है। अग्नि को बार-बार यज्ञ से सम्बन्धित बताया गया है। सामान्यतः अग्नि की आधिभौतिक क्रियायें ही उसके आधिभौतिक स्वरूप को स्पष्ट करती हैं।

आधिदैविक पक्ष में अग्नि देवता है। आधिदैविक स्वरूप में वह अग्नि देवता देव और दानादि गुणों से युक्त है। वह अग्नि सुखद अन्न, धन और पुत्र-पौत्रादि को देने वाला है। अग्नि-सूक्तों में कई स्थान पर अग्नि का स्तवन करते हुए उसे मरणधर्म रहित अमर देवता के रूप मे माना है। वह सूर्य देवता के समान क्रिया-कलापों वाला है। देवता रूप में वह अग्नि अत्यधिक तेज से युक्त है अर्थात् दीप्तिशाली है।

आध्यात्मिक पक्ष में अग्नि मनुष्य की दिव्य सङ्कल्प शक्ति और सद्-असद् विवेक समन्वित बुद्धि ही अग्नि है। सामान्यतः विद्वानों ने अग्नि को प्राणियों के भीतर विद्यमान अमर आत्मतत्त्व या शरीर को उष्ण रखने वाला प्राणतत्त्व माना है। अग्नि को सभी प्राणियों के भीतर स्थित माना गया है और प्राणियों के जीवन में सर्वप्रथम इसकी ही सृष्टि मानी है। यदि मनुष्य सङ्कल्प शक्ति अर्थात् आत्मविश्वास से युक्त है तो वह सब कुछ करने में समर्थ हो पाता है। उपनिषदों में भी कहा है कि- 'आत्मना विन्दते वीर्यम्।'

आध्यात्मिक पक्ष में अग्नि देवता को शरीर में स्थित ऊर्जा, प्राणतत्त्व और अन्तःशक्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया है। अग्नि देवता को आत्माग्नि कहते हुए उसे शरीर का अतिथि माना है। वह अग्नि देवता परमात्मा और संकल्पशक्ति के रूप में भी वर्णित है।

6. संदर्भ सूची

1. ऋ, 6.15.13

2. ऋ, 6.1.6
3. वैदिक देवता उद्भव और विकास, प्रो. गयाचरण त्रिपाठी, पृ. 507
4. ऋ, 6.1.1 पर सायणभाष्य।
5. ऋ., 6.1.2 पर सातवलेकर भाष्य : इळः पदे न्यसीदः।
6. ऋ., 6.3.4
7. ऋ, 6.15.8 पर सायणाभाष्य।
8. ऋ, 6.15.10 पर सातवलेकर भाष्य : अविद्वांसः विदुस्-तरं सुप्रतीकं सुदृशं स्वञ्चं सपेम।
9. ऋ., 6.1.6 पर दयानन्द भाष्य : यो विक्षु सपर्य्येण्यः प्रियो।
10. वैदिक व्याख्या पद्धत्ति में शतपथ ब्राह्मण का योगदान, डॉ. पुष्पा सिंह, पृ. 196
11. ऋ., 6.5.5 पर सायणभाष्य।
12. ऋ, 6.15.6 पर सायणभाष्य।
13. ऋ, 6.15.6 पर सातवलेकर भाष्य : देवेषु देवः वार्यं वनते।
14. ऋ, 6.1.13 पर सायणभाष्य : हे अग्ने राजन् ते तव पुरूणि बहूनि पुरुधा गवाश्वादिरूपेण बहुप्रकाराणि वसूनि धनानि वसुता।
15. ऋ, 6.13.6 पर सायणभाष्य : तोकं पुत्रं तनयं तत्पुत्रं च वाजि अन्नयुक्तं नोस्मभ्यं दाः।
16. ऋ, 6.1.3 पर सायणभाष्य।
17. ऋ, 6.4.6
18. ऋ, 6.2.6 पर सायणभाष्य : हे अग्ने त्वेषो दीप्तस्य ते तव शुक्रो निर्मलः शुभ्रवर्णो वा धूमो दिव्यन्तरिक्षे आततो विस्तीर्णः सन् ऋण्वति। मेघात्मना परिणतो गच्छति।
19. ऋग्वेद के अग्नि-सूक्तों की उपमाओं का अध्ययन, डॉ. हेमलता सिंह पृ. 28
20. ऋ., 6.9.4 पर सायणभाष्य।
21. ऋग्वेद के अग्नि-सूक्तों की उपमाओं का अध्ययन, डॉ. हेमलता सिंह, पृ. 28
22. ऋ, 6.1.1.
23. ऋ, 6.1.1 पर सायणभाष्य।
24. ऋ., 6.9.5
25. ऋ., 1.164.46
26. ऋ., 6.2.11
27. ऋ, 6.5.4